आज़ादी के बाद के शुरुआती दो दशकों में आधुनिक भारत के निर्माण के प्रयास हुए और इसमें सार्वजनिक क्षेत्र की विकास परियोजनाओं की भूमिका मुख्य रही। इस तरह के डाक-टिकट से इस बात की एक झलक मिलती है। आजकल ऐसे डाक-टिकट कुछ खास देखने में नहीं आते। क्या आप सोच सकते हैं क्यों?

इस अध्याय में...

पिछले दो अध्यायों में हमने पढ़ा कि स्वतंत्र भारत के नेताओं ने कैसे राष्ट्र-निर्माण और लोकतंत्र कायम करने की चुनौतियों का सामना किया। आइए, अब तीसरी चुनौती की ओर रुख करें। यह चुनौती आर्थिक विकास की थी, ताकि सबकी भलाई को सुनिश्चित किया जा सके। पहली दो चुनौतियों की तरह हमारे नेताओं ने इस मामले में भी कुछ अलग और तनिक कठिन रास्ता चुना। आर्थिक विकास के मामले में उन्हें एक सीमा तक ही सफलता मिली, क्योंकि आर्थिक विकास की चुनौती कहीं ज़्यादा कठिन और गहरी थी।

इस अध्याय में हम आर्थिक विकास के कुछ बुनियादी सवालों पर लिए गए राजनीतिक फ़ैसलों के बारे में पढ़ेंगे। ऐसे कुछ सवाल हैं :

- विकास को लेकर मुख्य बहसें क्या थीं और इनको लेकर कौन-से अहम फ़ैसले हुए?
- पहले दो दशकों में हमारे नेताओं ने कौन-सी रणनीति अपनाई और उन्होंने ऐसा क्यों किया?
- इस रणनीति की मुख्य उपलब्धियाँ क्या रहीं और इसकी सीमाएँ क्या थीं?
- बाद के सालों में इस रणनीति को क्यों छोड़ दिया गया?

अध्याय 3

नियोजित विकास की राजनीति

12122CH03

राजनीतिक फ़ैसले और विकास

इस्पात की विश्वव्यापी माँग बढ़ी तो निवेश के लिहाज़ से उड़ीसा एक महत्त्वपूर्ण जगह के रूप में उभरा। उड़ीसा में लौह-अयस्क का विशाल भंडार था और अभी इसका दोहन बाकी था। उड़ीसा की राज्य सरकार ने लौह-अयस्क की इस अप्रत्याशित माँग को भुनाना चाहा। उसने अंतर्राष्ट्रीय इस्पात-निर्माताओं और राष्ट्रीय-स्तर के इस्पात-निर्माताओं के साथ सहमति-पत्र पर हस्ताक्षर किए। सरकार सोच रही थी कि इससे राज्य में ज़रूरी पूँजी-निवेश भी हो जाएगा और रोज़गार के अवसर भी बड़ी संख्या में सामने आएँगे। लौह-अयस्क के ज़्यादातर भंडार उड़ीसा के सर्वाधिक अविकसित इलाकों में हैं–खासकर इस राज्य के आदिवासी-बहुल जिलों में। आदिवासियों को डर है कि अगर यहाँ उद्योग लग गए तो उन्हें अपने घर-बार से विस्थापित होना पड़ेगा और आजीविका भी छिन जाएगी। पर्यावरणविदों को इस बात का भय है कि खनन और उद्योग से पर्यावरण प्रदूषित होगा। केंद्र सरकार को लगता है कि अगर उद्योग लगाने की अनुमति नहीं दी गई, तो इससे एक बुरी मिसाल कायम होगी और देश में पूँजी निवेश को बाधा पहुँचेगी।

इस उदाहरण में कई तरह के हित सक्रिय हैं। क्या आप इन हितों को पहचान सकते हैं? ऊपर के उदाहरण में संघर्ष के अहम बिंदु कौन-कौन से हैं? क्या आपको लगता है कि कोई ऐसा बिंदु भी है जिस पर सभी पक्ष राजी हो सकें? क्या इस मसले को इस भाँति सुलझाया जा सकता है कि इससे संबद्ध सभी हितों को संतुष्ट किया जा सके? आप जैसे ही इन सवालों को पूछेंगे तो आपके सामने एक बड़ा सवाल उठ खड़ा होगा–उड़ीसा में किस तरह के विकास की ज़रूरत है? दरअसल, किसकी ज़रूरतों को उड़ीसा की ज़रूरत कहा जाए?

राजनीतिक टकराव

इन सवालों के ज़वाब कोई विशेषज्ञ नहीं दे सकता। इस तरह के फ़ैसलों में एक सामाजिक-समूह के हितों को दूसरे सामाजिक-समूह के हितों की तुलना में तौला जाता है। साथ ही मौजूदा पीढ़ी के हितों और आने वाली पीढ़ी के हितों को भी लाभ-हानि की तुला पर मापना पड़ता है। किसी भी लोकतंत्र में ऐसे फ़ैसले जनता द्वारा लिए जाने चाहिए या कम-से-कम इन फ़ैसलों पर विशेषज्ञों की स्वीकृति की मुहर ज़रूर होनी चाहिए। खनन, पर्यावरण और अर्थशास्त्र के विशेषज्ञों की राय जानना महत्त्वपूर्ण है, लेकिन अंतिम निर्णय निश्चित तौर पर राजनीतिक निर्णय होना चाहिए। जन-प्रतिनिधि जनता की भावनाओं को समझते हैं और जन-प्रतिनिधियों को ही ऐसे फ़ैसले लेने चाहिए।

पोस्को प्लांट : उड़ीसा के ग्रामीण विरोध पर उतारू

कार्यालय संवादाता

भुवनेश्वर: जगतसिंह जिले में प्रस्तावित पोस्को-इंडिया इस्पात संयंत्र से विस्थापन का शिकार हुए लोगों ने इस कोरियाई कंपनी के दफ्तर के सामने गुरुवार को विरोध प्रदर्शन किया। यह लोग माँग कर रहे थे कि एक साल पहले कंपनी और उड़ीसा की सरकार के बीच जिस सहमति पत्र पर हस्ताक्षर हुए थे उसे रद्द कर दिया जाए।

धिंकिया, नुआंगाँव और गढ़कुजंगा ग्राम पंचायत के एक सौ से भी ” यादा स्त्री-पुरुषों ने कंपनी के दफ्तर में घुसने की कोशिश की लेकिन पुलिस ने उन्हें रोक दिया। प्रदर्शनकारियों ने नारे लगाए और कहा कि हमारी जीविका और जीवन की कीमत पर कंपनी को इस्पात संयंत्र लगाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। इस विरोध प्रदर्शन का आयोजन राष्ट्रीय युवा संगठन और नवनिर्माण समिति ने किया था।

साभार : 'द हिंदू', 23 जून, 2006

© NCERT not to be republished

क्या है वामपंथ और क्या है दक्षिणपंथ?

जब विभिन्न देशों की राजनीति की बात होती है तो अकसर वहाँ के राजनीतिक दल अथवा समूहों का हवाला देते हुए कहा जाता है कि इस या उस पार्टी या समूह की विचारधारा वामपंथी अथवा दक्षिणपंथी रुझान वाली है। आपने ऐसा जिक्र ज़रूर ही पढ़ा होगा। 'दक्षिणपंथ' अथवा 'वामपंथ' शब्द से किसी राजनीतिक दल अथवा समूह के बारे में यह प्रकट होता है कि सामाजिक बदलाव को लेकर वह कौन-सा पक्ष लेगा या आर्थिक पुनर्वितरण में राज्य की भूमिका के बारे में उसकी क्या राय होगी। 'वामपंथ' से अमूमन उन लोगों की तरफ़ संकेत किया जाता है जो गरीब और पिछड़े सामाजिक समूह की तरफ़दारी करते हैं और इन तबकों को फ़ायदा पहुँचाने वाली सरकारी नीतियों का समर्थन करते हैं। 'दक्षिणपंथ' से उन लोगों को इंगित किया जाता है जो यह मानते हैं कि खुली प्रतिस्पर्धा और बाज़ारमूलक अर्थव्यवस्था के ज़रिए ही प्रगति हो सकती है-यानी सरकार को अर्थव्यवस्था में गैरज़रूरी हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

क्या आप बता सकते हैं कि 1960 के दशक में कौन-से राजनीतिक दल वामपंथी और कौन-से दक्षिणपंथी थे। आप इस दौर की कांग्रेस पार्टी को किस तरफ़ रखेंगे?

आज़ादी के बाद अपने देश में ऐसे कई फ़ैसले लिए गए। इनमें से कोई भी फ़ैसला बाकी फ़ैसलों से मुँह फेरकर नहीं लिया जा सकता था। सारे के सारे फ़ैसले आपस में आर्थिक विकास के एक मॉडल या यों कहें कि एक 'विज़न' से बँधे हुए थे। लगभग सभी इस बात पर सहमत थे कि भारत के विकास का अर्थ आर्थिक संवृद्धि और आर्थिक-सामाजिक न्याय दोनों ही हैं। इस बात पर भी सहमति थी कि इस मामले को व्यवसायी, उद्योगपति और किसानों के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता। सरकार को इस मसले में प्रमुख भूमिका निभानी थी। बहरहाल, आर्थिक-संवृद्धि हो और सामाजिक न्याय भी मिले–इसे सुनिश्चित करने के लिए सरकार कौन-सी भूमिका निभाए? इस सवाल पर मतभेद थे। क्या कोई ऐसा केंद्रीय संगठन ज़रूरी है जो पूरे देश के लिए योजना बनाए? क्या सरकार को कुछ महत्त्वपूर्ण उद्योग और व्यवसाय खुद चलाने चाहिए? अगर सामाजिक न्याय आर्थिक संवृद्धि की ज़रूरतों के आड़े आता हो तो ऐसी सूरत में सामाजिक-न्याय पर कितना ज़ोर देना उचित होगा?

इनमें से प्रत्येक सवाल पर टकराव हुए जो आज तक जारी हैं। जो फ़ैसले लिए गए उनके राजनीतिक परिणाम सामने आए। इनमें से अधिकतर मसलों पर राजनीतिक रूप से कोई फ़ैसला लेना ही था और इसके लिए राजनीतिक दलों से सलाह-मशविरा करना ज़रूरी था, साथ ही जनता की स्वीकृति भी हासिल करनी थी। इसी कारण भारत की राजनीति के इतिहास को जानने के लिए हमें विकास के कथाक्रम को पढ़ना ज़रूरी है।

विकास की धारणाएँ

अकसर इन टकरावों के पीछे विकास की धारणाओं का हाथ होता है। उड़ीसा के उदाहरण से हमें पता चलता है कि इतना कह देने भर से बात नहीं बनती कि हर कोई विकास चाहता है। जनता के विभिन्न तबकों के लिए 'विकास' के अर्थ अलग-अलग होते हैं। मिसाल के लिए इस्पात-संयंत्र बैठाने की योजना बना रहे उद्योगपति, इस्पात के किसी शहरी उपभोक्ता और इस्पात-संयंत्र के लिए प्रस्तावित इलाके में रह रहे किसी आदिवासी के लिए 'विकास' का अर्थ अलग-अलग होगा। इस कारण 'विकास' से जुड़ी कोई भी 'चर्चा' विवादों से परे नहीं होती।

आज़ादी के बाद के पहले दशक में इस सवाल पर खूब बहसें हुईं। उस वक्त लोग-बाग 'विकास' की बात आते ही 'पश्चिम' का हवाला देते थे कि 'विकास' का पैमाना 'पश्चिमी' मुल्क हैं। आज भी एक अर्थ में हम इस बात को लक्ष्य कर सकते हैं। 'विकास' का अर्थ था ज़्यादा-से-ज़्यादा आधुनिक होना और आधुनिक होने का अर्थ था, पश्चिमी औद्योगिक देशों की तरह होना। माना जाता था कि पश्चिमी मुल्कों की तरह हर देश को आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से गुज़रना होगा। जिस तरह पश्चिमी मुल्कों में आधुनिकीकरण के

© NCERT not to be republished

कारण पुरानी सामाजिक संरचना टूटी और पूँजीवाद तथा उदारवाद का उदय हुआ, उसी तरह दुनिया के बाकी देशों में भी होगा। आधुनिकीकरण को संवृद्धि, भौतिक प्रगति और वैज्ञानिक तर्कबुद्धि का पर्यायवाची माना जाता था। 'विकास' की ऐसी धारणा को मानने के कारण तब हर कोई विभिन्न देशों को विकसित, विकासशील अथवा अविकसित बताकर उसके बारे में अपनी बातें कहता था।

आज़ादी के वक्त हिंदुस्तान के सामने विकास के दो मॉडल थे। पहला उदारवादी-पूंजीवादी मॉडल था। यूरोप के अधिकतर हिस्सों और संयुक्त राज्य अमरीका में यही मॉडल अपनाया गया था। दूसरा समाजवादी मॉडल था। इसे सोवियत संघ ने अपनाया था। आप इन दोनों विचारधाराओं के बारे में पढ़ चुके हैं और आप यह भी जानते हैं कि दो महाशक्तियों के बीच 'शीतयुद्ध' का दौर चला था। उस वक्त हिंदुस्तान में बहुत-से लोग विकास के सोवियत मॉडल से गहरे तौर पर प्रभावित थे। ऐसे लोगों में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के ही नहीं बल्कि सोशलिस्ट पार्टी और खुद कांग्रेस के नेहरू तक शामिल थे। अमरीकी तर्ज के पूँजीवादी विकास के पैरोकार बहुत कम थे।

आज़ादी के आंदोलन के दौरान ही एक सहमति बन गई थी और नेताओं की इस पसंद में यही सहमति प्रतिबिंबित हो रही थी। राष्ट्रवादी नेताओं के मन में यह बात बिलकुल साफ़ थी कि आज़ाद भारत की सरकार के आर्थिक सरोकार अंग्रेजी हुकूमत के आर्थिक सरोकारों से एकदम अलग होंगे। आज़ाद भारत की सरकार अंग्रेजी हुकूमत की तरह संकुचित व्यापारिक हितों की पूर्ति के लिए काम नहीं करेगी। आज़ादी के आंदोलन के दौरान ही यह बात भी साफ़ हो गई थी कि गरीबी मिटाने और सामाजिक-आर्थिक पुनर्वितरण के काम का मुख्य जिम्मा सरकार का होगा। नेताओं में इन बातों को लेकर बहस छिड़ी। कुछ औद्योगीकरण को उचित रास्ता मानते थे तो कुछ की नज़र में कृषि का विकास करना और ग्रामीण क्षेत्र की गरीबी को दूर करना सर्वाधिक ज़रूरी था।

साभार : हिंदुस्तान टाइम्स

योजना आयोग के सदस्यों को संबोधित करते हुए नेहरू

साभार : नैनन

योजना आयोग

पिछले साल आपने 'भारतीय संविधान : सिद्धांत और व्यवहार' नाम की किताब पढ़ी थी। क्या आप बता सकते हैं कि इसमें योजना आयोग का कोई जिक्र आया था या नहीं? दरअसल, योजना आयोग का जिक्र इस किताब में कहीं नहीं है क्योंकि योजना आयोग संविधान द्वारा स्थापित बाकी आयोगों अथवा दूसरे निकायों की तरह नहीं है। योजना आयोग की स्थापना, मार्च 1950 में, भारत सरकार ने एक सीधे-सादे प्रस्ताव के ज़रिए की। यह आयोग एक सलाहकार की भूमिका निभाता है और इसकी सिफारिशें तभी प्रभावकारी हो पाती हैं जब मंत्रिमंडल उन्हें मंजूर करे। जिस प्रस्ताव के ज़रिए योजना आयोग की स्थापना हुई थी उसमें इसके कार्यों के दायरे का उल्लेख करते हुए कहा गया था:

क्या योजना आयोग ने इन उद्देश्यों पर अमल किया है?

"भारत के संविधान में भारत के नागरिकों को कुछ मौलिक अधिकार दिए गए हैं और राज्य के लिए नीति-निर्देशक तत्वों का उल्लेख किया गया है। नीति-निर्देशक तत्वों के अंतर्गत यह बात विशेष रूप से कही गई है कि राज्य एक ऐसी समाज-रचना को बनाते-बचाते हुए... लोगों की भलाई के लिए प्रयास करेगा जहाँ राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाएँ सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की भावना से अनुप्राणित हों... राज्य अन्य बातों के अतिरिक्त अपनी नीतियों को इस तरह बनाएगा और अमल में लाएगा कि

(क) स्त्री और पुरुष, सभी नागरिकों को आजीविका के पर्याप्त साधनों का बराबर-बराबर अधिकार हो।

(ख) समुदाय के भौतिक संसाधनों की मिल्कियत और नियंत्रण को इस तरह बाँटा जाएगा कि उससे सर्वसामान्य की भलाई हो; और

(ग) अर्थव्यवस्था का संचालन इस तरह नहीं किया जाएगा कि धन अथवा उत्पादन के साधन एकाध जगह केंद्रित हो जाएँ और जनसामान्य की भलाई बाधित हो।

कुछ आगे की... नीति आयोग ▶▶

भारत सरकार ने योजना आयोग के स्थान पर एक नई संस्था, नीति आयोग (राष्ट्रीय भारत परिवर्तन संस्था) की स्थापना की। यह संस्था 1 जनवरी 2015 को अस्तित्व में आई। इसके उद्देश्य और संरचना को जानने के लिए वेबसाइट, http://niti.gov.in से पता करें।

© NCERT not to be republished

नियोजन

मतभेदों के बावजूद एक बिंदु पर सभी सहमत थे कि विकास का काम निजी हाथों में नहीं सौंपा जा सकता और सरकार के लिए ज़रूरी है कि वह विकास का एक खाका अथवा योजना तैयार करे। दरअसल अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण के लिए नियोजन के विचार को 1940 और 1950 के दशक में पूरे विश्व में जनसमर्थन मिला था। यूरोप 'महामंदी' का शिकार होकर कुछ सबक सीख चुका था; जापान और जर्मनी ने युद्ध की विभीषिका झेलने के बाद अपनी अर्थव्यवस्था फिर खड़ी कर ली थी और सोवियत संघ ने 1930 तथा 1940 के दशक में भारी कठिनाइयों के बीच शानदार आर्थिक प्रगति की थी। इन सारी बातों के कारण नियोजन के पक्ष में दुनिया भर में हवा बह रही थी।

इस तरह देखें तो योजना आयोग कोई आकस्मिक आविष्कार नहीं था। दरअसल, यह कहानी अपने आप में बड़ी दिलचस्प है। हम आमतौर पर सोचते हैं कि निजी निवेशक मसलन उद्योगपति और बड़े व्यापारिक उद्यमी नियोजन के पक्ष में नहीं होते; वे एक खुली अर्थव्यवस्था चाहते हैं जहाँ पूँजी के बहाव पर सरकार का कोई अंकुश न हो। लेकिन, भारत में ऐसा नहीं हुआ। 1944 में उद्योगपतियों का एक तबका एकजुट हुआ। इस समूह ने देश में नियोजित अर्थव्यवस्था चलाने का एक संयुक्त प्रस्ताव तैयार किया। इसे 'बॉम्बे प्लान' कहा जाता है। 'बॉम्बे प्लान' की मंशा थी कि सरकार औद्योगिक तथा अन्य आर्थिक निवेश के क्षेत्र में बड़े कदम उठाए। इस तरह चाहे दक्षिणपंथी हों अथवा वामपंथी, उस वक्त सभी चाहते थे कि देश नियोजित अर्थव्यवस्था की राह पर चले। भारत के आज़ाद होते ही योजना आयोग अस्तित्व में आया। प्रधानमंत्री इसके अध्यक्ष बने। भारत अपने विकास के लिए कौन-सा रास्ता और रणनीति अपनाएगा—यह फ़ैसला करने में इस संस्था ने केंद्रीय और सबसे प्रभावशाली भूमिका निभाई।

शुरुआती कदम

सोवियत संघ की तरह भारत के योजना आयोग ने भी पंचवर्षीय योजनाओं का विकल्प चुना। इसके पीछे एक सीधा-सादा विचार था कि भारत सरकार अपनी तरफ़ से एक दस्तावेज़ तैयार करेगी, जिसमें अगले पाँच सालों के लिए उसकी आमदनी और खर्च की योजना होगी। इस

SAREES

The Hindustan Times

NEW HUDSON AUTOCYCLES

FIVE-YEAR PLAN PRESENTED TO PARLIAMENT

Discussion On Plan To Begin On Monday

Rs 2,069 CRORES OUTLAY FOR VARIOUS PROJECTS

Blue-print For Increasing National Wealth

DEVELOPMENT SCHEMES FOR DELHI

© NCERT not to be republished

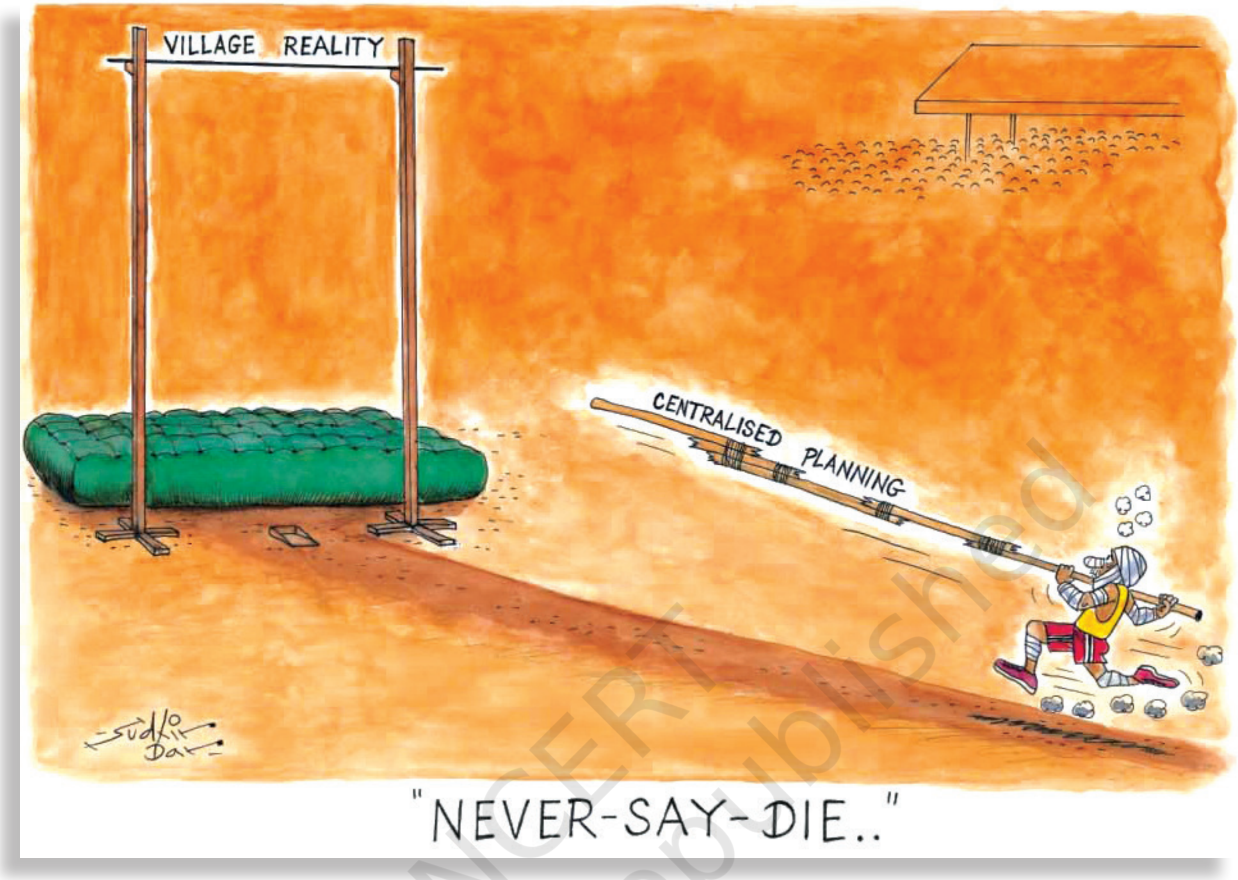

साभार : सुधीर दर/यूएनडीपी एवं योजना आयोग

योजना के अनुसार केंद्र सरकार और सभी राज्य-सरकारों के बजट को दो हिस्सों में बाँटा गया। एक हिस्सा गैरयोजना-व्यय का था। इसके अंतर्गत सालाना आधार पर दैनंदिन मदों पर खर्च करना था। दूसरा हिस्सा योजना-व्यय का था। योजना में तय की गई प्राथमिकताओं को ध्यान में रखते हुए इसे पाँच साल की अवधि में खर्च करना था। पंचवर्षीय योजना पर अमल करने का एक फ़ायदा यह था कि सरकार के सामने अर्थव्यवस्था की एक बड़ी तसवीर होती थी और वह अर्थव्यवस्था में लंबी अवधि के हस्तक्षेप कर सकती थी।

प्रथम पंचवर्षीय योजना का प्रारूप

1951 में प्रथम पंचवर्षीय योजना का प्रारूप जारी हुआ और इसी साल नवंबर में इस योजना का वास्तविक दस्तावेज़ भी जारी किया गया। इससे देश में गहमागहमी का माहौल पैदा हुआ। जीवन के हर क्षेत्र के लोग मसलन-बुद्धिजीवी, पत्रकार, सरकारी और गैर-सरकारी क्षेत्र के कर्मचारी, उद्योगपति, किसान और राजनेता आदि ने योजना के दस्तावेज़ों पर व्यापक बहस-मुबाहिसा चलाया। नियोजन को लेकर देश में जो गहमागहमी पैदा हुई थी वह 1956 से चालू दूसरी पंचवर्षीय योजना के साथ अपने चरम पर पहुँच गई। 1961 की तीसरी पंचवर्षीय योजना के समय तक यह माहौल जारी रहा। चौथी पंचवर्षीय योजना 1966 से चालू होनी थी। लेकिन, इस वक्त तक नियोजन का नयापन एक हद तक मंद पड़ गया था और भारत गहन आर्थिक संकट की चपेट में आ चुका था। सरकार ने पंचवर्षीय योजना को थोड़ी देर का विराम देने का फ़ैसला किया। हालाँकि इन योजनाओं की प्राथमिकताओं और प्रक्रिया को लेकर अनेक आलोचनाएँ सामने आईं लेकिन यह बात सच है कि इस वक्त तक भारत के आर्थिक विकास की बुनियाद पड़ चुकी थी।

© NCERT not to be republished

प्रथम पंचवर्षीय योजना

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-1956) की कोशिश देश को गरीबी के मकड़जाल से निकालने की थी। योजना को तैयार करने में जुटे विशेषज्ञों में एक के.एन. राज थे। इस युवा अर्थशास्त्री की दलील थी कि अगले दो दशक तक भारत को अपनी चाल 'धीमी' रखनी चाहिए क्योंकि तेज़ रफ्तार विकास से अर्थव्यवस्था को नुकसान पहुँचेगा। पहली पंचवर्षीय योजना में ज़्यादा ज़ोर कृषि-क्षेत्र पर था। इसी योजना के अंतर्गत बाँध और सिंचाई के क्षेत्र में निवेश किया गया। विभाजन के कारण कृषि-क्षेत्र को गहरी मार लगी थी और इस क्षेत्र पर तुरंत ध्यान देना ज़रूरी था। भाखड़ा-नांगल जैसी विशाल परियोजनाओं के लिए बड़ी धनराशि आबंटित की गई। इस पंचवर्षीय योजना में माना गया था कि देश में भूमि के वितरण का जो ढर्रा मौजूद है उससे कृषि के विकास को सबसे बड़ी बाधा पहुँचती है। इस योजना में भूमि-सुधार पर ज़ोर दिया गया और उसे देश के विकास की बुनियादी चीज़ माना गया।

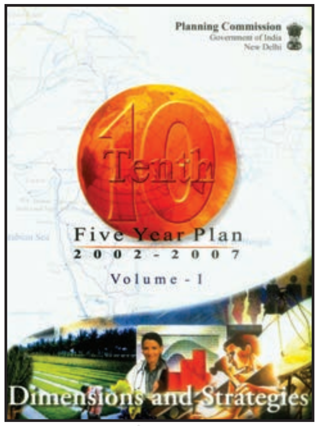

दसवीं पंचवर्षीय योजना का दस्तावेज़।

योजनाकारों का बुनियादी लक्ष्य राष्ट्रीय आय के स्तर को ऊँचा करने का था। यह तभी संभव था जब लोगों की बचत उनके खर्चे से ज़्यादा हो। 1950 के दशक में खर्च का स्तर भी बहुत नीचे था। इसे अब और कम नहीं किया जा सकता था। योजनाकारों ने बचत को बढ़ावा देने की कोशिश की। यह काम भी कठिन था क्योंकि देश में रोज़गार के काबिल जितने लोग थे उनकी तुलना में देश का मौजूदा पूँजी-भंडार कम था। बहरहाल, नियोजन की प्रक्रिया में लोगों की बचत तीसरी पंचवर्षीय योजना तक बढ़ी। लेकिन, यह बचत उम्मीद के अनुरूप नहीं थी। प्रथम पंचवर्षीय योजना की शुरुआत में इससे कहीं ज़्यादा बचत की उम्मीद की गई थी। बाद के दिनों में यानी 1960 के दशक से लेकर 1970 के दशक के शुरुआती सालों तक बचत की मात्रा में लगातार कमी आई।

औद्योगीकरण की तेज़ रफ्तार

दूसरी पंचवर्षीय योजना में भारी उद्योगों के विकास पर ज़ोर दिया गया। पी.सी. महालनोबिस के नेतृत्व में अर्थशास्त्रियों और योजनाकारों की एक टोली ने यह योजना तैयार की थी। पहली योजना का मूलमंत्र था धीरज, लेकिन दूसरी योजना की कोशिश तेज़ गति से संरचनात्मक बदलाव करने की थी। इसके लिए हर संभव दिशा में बदलाव की बात तय की गई थी। सरकार ने देसी उद्योगों को संरक्षण देने के लिए आयात पर भारी शुल्क लगाया। संरक्षण की इस नीति से निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों को आगे बढ़ने में मदद मिली। चूँकि इस अवधि में बचत और निवेश दोनों ही बढ़ रहे थे इसलिए बिजली, रेलवे, इस्पात, मशीनरी और संचार जैसे उद्योगों को सार्वजनिक क्षेत्र में विकसित किया जा सकता था। दरअसल, औद्योगीकरण पर दिए गए इस ज़ोर ने भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास को एक नया आयाम दिया।

पी.सी. महालनोबिस (1893-1972) : अंतरराष्ट्रीय स्तर के विख्यात वैज्ञानिक एवं सांख्यिकीविद ; भारतीय सांख्यिकी संस्थान (1931) के संस्थापक; दूसरी पंचवर्षीय योजना के योजनाकार; तीव्र औद्योगीकरण और सार्वजनिक क्षेत्र की सक्रिय भूमिका के समर्थक।

बहरहाल, इसके साथ कुछ समस्याएँ भी थीं। भारत प्रौद्योगिकी के लिहाज़ से पिछड़ा हुआ था और विश्व बाज़ार से प्रौद्योगिकी खरीदने में उसे अपनी बहुमूल्य विदेशी मुद्रा खर्च करनी पड़ी। इसके अतिरिक्त, उद्योगों ने कृषि की अपेक्षा निवेश को ज़्यादा आकर्षित किया। ऐसे में खाद्यान्न-संकट की आशंका अलग से सता रही थी। भारत के योजनाकारों को उद्योग और कृषि के बीच संतुलन साधने में भारी कठिनाई आई। तीसरी पंचवर्षीय योजना

© NCERT not to be republished

पहली और दूसरी पंचवर्षीय योजना में आबंटन (प्रतिशत में)

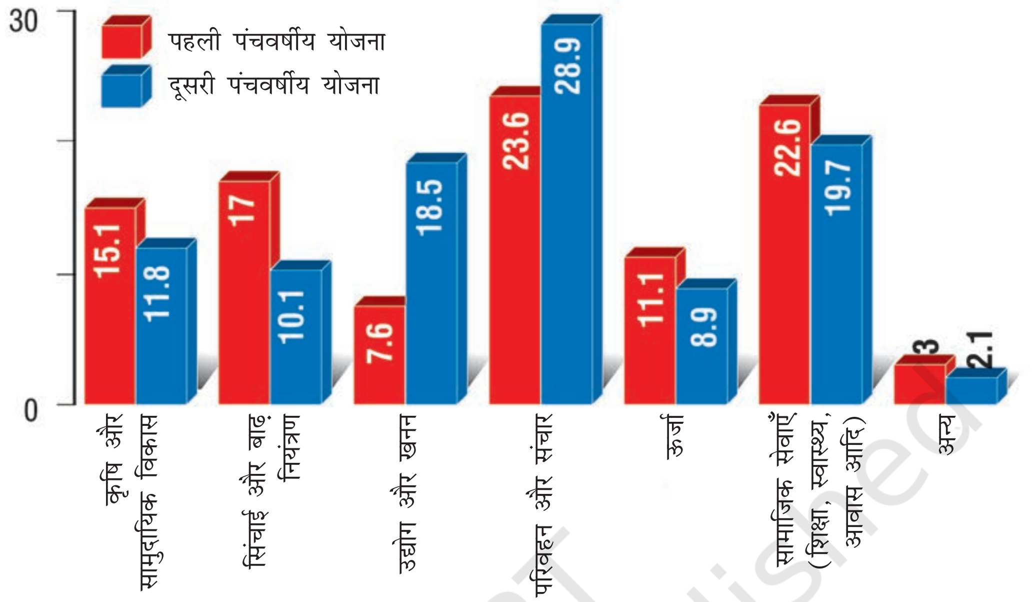

विकास के प्रमुख मद

विकेंद्रित नियोजन

ज़रूरी नहीं कि हर नियोजन केंद्रीकृत ही हो। ऐसा भी नहीं है कि नियोजन का मतलब हमेशा उद्योगों और बड़ी-बड़ी परियोजनाओं से ही लगाया जाए। केरल में विकास और नियोजन के लिए जो रास्ता चुना गया उसे 'केरल मॉडल' कहा जाता है। इस मॉडल में शिक्षा, स्वास्थ्य, भूमि-सुधार, कारगर खाद्य-वितरण और गरीबी-उन्मूलन पर ज़ोर दिया जाता रहा है। केरल में प्रति व्यक्ति आय अपेक्षाकृत कम है और यहाँ औद्योगिक-आधार भी तुलनात्मक रूप से कमज़ोर रहा है। इसके बावजूद केरल में साक्षरता शत-प्रतिशत है। आयु प्रत्याशा बढ़ी है और वहाँ शिशु मृत्यु-दर, मातृ मृत्यु-दर और जन्म-दर भी कम है। केरल में लोगों को कहीं ज़्यादा चिकित्सा-सुविधा मुहैया है। 1987 से 1991 के बीच सरकार ने 'नव लोकतांत्रिक पहल' नाम से अभियान चलाया। इसके अंतर्गत विकास के अभियान चले (जिसमें विज्ञान और पर्यावरण के मामले में शत-प्रतिशत साक्षरता का अभियान शामिल है)। इन अभियानों की रूपरेखा इस तरह बनाई गई थी कि लोगों को स्वयंसेवी नागरिक संगठनों के माध्यम से विकास की गतिविधियों में सीधे शामिल किया जा सके। केरल में इस बात के भी प्रयास किए गए कि लोग पंचायत, प्रखंड और जिला स्तर की योजनाओं को तैयार करने में शामिल हों।

दूसरी योजना से कुछ खास अलग नहीं थी। आलोचकों ने ध्यान दिलाया है कि इस समय से योजना की रणनीतियों में सीधे-सीधे 'शहरों' की तरफ़दारी होती नज़र आती है। कुछ अन्य लोगों का मानना था कि कृषि की जगह उद्योग को प्राथमिकता देकर गलती की गई। कुछ ऐसे भी लोग थे जो चाहते थे कि भारी उद्योगों की जगह कृषि-आधारित उद्योगों पर ज़ोर दिया जाए।

जे.सी. कुमारप्पा

(1892-1960) : असली नाम जे.सी. कॉर्नेलियस; अर्थशास्त्री एवं चार्टर्ड अकाउंटेंट; इंग्लैंड एवं अमेरिका में शिक्षा; महात्मा गाँधी के अनुयायी; गाँधीवादी आर्थिक नीतियों को लागू करने की कोशिश; 'इकॉनोमी ऑफ परमानेंस' के लेखक; योजना आयोग के सदस्य के रूप में योजना प्रक्रिया में हिस्सेदारी।

© NCERT not to be republished

प्रश्नावली

1. 'बॉम्बे प्लान' के बारे में निम्नलिखित में कौन-सा बयान सही नहीं है।
   (क) यह भारत के आर्थिक भविष्य का एक ब्लू-प्रिंट था।
   (ख) इसमें उद्योगों के ऊपर राज्य के स्वामित्व का समर्थन किया गया था।
   (ग) इसकी रचना कुछ अग्रणी उद्योगपतियों ने की थी।
   (घ) इसमें नियोजन के विचार का पुरज़ोर समर्थन किया गया था।

2. भारत ने शुरुआती दौर में विकास की जो नीति अपनाई उसमें निम्नलिखित में से कौन-सा विचार शामिल नहीं था?
   (क) नियोजन
   (ख) उदारीकरण
   (ग) सहकारी खेती
   (घ) आत्मनिर्भरता

3. भारत में नियोजित अर्थव्यवस्था चलाने का विचार–ग्रहण किया गया था:
   (क) बॉम्बे प्लान से
   (ख) सोवियत खेमे के देशों के अनुभवों से
   (ग) समाज के बारे में गाँधीवादी विचार से
   (घ) किसान संगठनों की माँगों से

   (क) सिर्फ़ ख और घ
   (ख) सिर्फ़ क और ख
   (ग) सिर्फ़ घ और ग
   (घ) उपर्युक्त सभी

4. निम्नलिखित का मेल करें:

(क) चरण सिंह	(i) औद्योगीकरण
(ख) पी.सी. महालनोबिस	(ii) जोनिंग
(ग) बिहार का अकाल	(iii) किसान
(घ) वर्गीज कूरियन	(iv) सहकारी डेयरी

5. आज़ादी के समय विकास के सवाल पर प्रमुख मतभेद क्या थे? क्या इन मतभेदों को सुलझा लिया गया?

6. पहली पंचवर्षीय योजना का किस चीज़ पर सबसे ज़्यादा ज़ोर था? दूसरी पंचवर्षीय योजना पहली से किन अर्थों में अलग थी?

7. निम्नलिखित अवतरण को पढ़ें और इसके आधार पर पूछे गए प्रश्नों के उत्तर दें:

   आज़ादी के बाद के आरंभिक वर्षों में कांग्रेस पार्टी के भीतर दो परस्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ पनपीं। एक तरफ राष्ट्रीय पार्टी कार्यकारिणी ने राज्य के स्वामित्व का समाजवादी सिद्धांत अपनाया, उत्पादकता को बढ़ाने के साथ-साथ आर्थिक संसाधनों के संकेंद्रण को रोकने के लिए अर्थव्यवस्था के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों का नियंत्रण और नियमन किया। दूसरी तरफ कांग्रेस की राष्ट्रीय सरकार ने निजी निवेश के लिए उदार आर्थिक नीतियाँ अपनाईं और उसके बढ़ावे के लिए विशेष कदम उठाए। इसे उत्पादन में अधिकतम वृद्धि की अकेली कसौटी पर जायज़ ठहराया गया।

   – ***फ्रैंकिन फ्रैंकल***

   (क) यहाँ लेखक किस अंतर्विरोध की चर्चा कर रहा है? ऐसे अंतर्विरोध के राजनीतिक परिणाम क्या होंगे?
   (ख) अगर लेखक की बात सही है तो फिर बताएँ कि कांग्रेस इस नीति पर क्यों चल रही थी? क्या इसका संबंध विपक्षी दलों की प्रकृति से था?
   (ग) क्या कांग्रेस पार्टी के केंद्रीय नेतृत्व और इसके प्रांतीय नेताओं के बीच भी कोई अंतर्विरोध था?

© NCERT not to be republished